राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 7612/2015

श्रीमती शशि बाला मीना पत्नी श्री नरसी लाल मीना, उम्र लगभग 46 वर्ष, निवासी प्लॉट संख्या सी-4/233, चित्रकोट, वैशाली नगर के पास, जयपुर (राजस्थान)

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. पंजाब नेशनल बैंक-प्रबंध निदेशक-सह-मुख्य कार्यकारी अधिकारी, प्रधान कार्यालय, प्लॉट संख्या 4, सेक्टर 10 द्वारका, नई दिल्ली-110075 के माध्यम से
2. उप महाप्रबंधक (एचआर) सह अपीलीय प्राधिकारी, पंजाब नेशनल बैंक, सेक्टर 10 द्वारका, नई दिल्ली- 110075।
3. सहायक महाप्रबंधक (एचआरएम) और अनुशासनात्मक प्राधिकारी, पंजाब नेशनल बैंक, सेक्टर 10 द्वारका, नई दिल्ली-110075।

----प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थी की ओर से	:	श्री अखिल सिमलोटे श्री दीक्षांत जैन श्री अश्विनी राज तंवर
प्रत्यर्थी की ओर से	:	श्री अजय शुक्ला श्री राघव शर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढांड

आदेश सुरक्षित करने की तिथि	:	01/05/2023
आदेश उच्चारित करने की तिथि	:	24/05/2023

<u>निर्णय</u>

<u>रिपोर्टेबल</u>

(1) याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित प्रार्थना के साथ यह याचिका दायर की गई है:-

> "अत: यह प्रार्थना की जाती है कि रिट याचिका को स्वीकार कर अनुमति देने की कृपा करें और वर्तमान मामले से संबंधित संपूर्ण रिकॉर्ड मंगवाया जाए;

i) उपयुक्त रिट, आदेश या प्रकृति के निर्देश द्वारा, दिनांक 15.1.2015 के आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता को 17.01.2015 (अनुलग्नक-38) और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश दिनांक 12.03.2015 (अनुलग्नक-40) को सूचित किए गए थे। कृपया इसे अपास्त कर अलग रखा जाए। इसके अलावा याचिकाकर्ता को 24% ब्याज के साथ सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल किया जाए।

ii) कोई अन्य आदेश जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उपयुक्त और उचित समझे, याचिकाकर्ता के पक्ष में भी पारित किया जाए।

iii) कृपया रिट याचिका की लागत याचिकाकर्ता के पक्ष में दी जाए।"

(2) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि पूरी सेवा के दौरान, याचिकाकर्ता को 24 बार स्थानांतरित किया गया और उसने उच्च अधिकारियों द्वारा जारी आदेश/आदेश का पालन करते हुए स्थानांतरित स्थानों पर कार्यभार ग्रहण किया। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के सेवा कार्यकाल के दौरान उसे तीन पदोन्नतियां दी गईं और उसकी सेवाएं बेदाग रहीं और उसके सेवा कार्यकाल के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई जुर्माना नहीं लगाया गया। अधिवक्ता का कहना है कि दिनांक 19.04.2014 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को जयपुर शाखा से अलवर शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया था और याचिकाकर्ता को 29.04.2014 को या उससे पहले स्थानांतरित स्थान पर कार्यभार ग्रहण करना था। अधिवक्ता का कहना है कि अपनी पारिवारिक परिस्थितियों के कारण याचिकाकर्ता कार्यभार ग्रहण नहीं कर सकी और उसने अधिकारियों से उसे जयपुर शाखा में बनाए रखने का अनुरोध किया। अधिवक्ता का कहना है कि जब याचिकाकर्ता के अनुरोध पर विचार नहीं किया गया, तो चिकित्सा आधार पर विशेषाधिकार छुट्टी देने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया। अधिवक्ता का कहना है कि आवेदन पर विचार किए बिना, उसका कार्यमुक्ति आदेश 29.04.2014 को पारित कर दिया गया, जिसमें निर्देश दिया गया कि वह तुरंत कार्यभार ग्रहण करेगा और उसके बाद कार्यभार ग्रहण छुट्टी का लाभ उठाया जाएगा। अधिवक्ता का कहना है कि जब भी कार्यमुक्त करने का आदेश पारित किया जाता है, तो कार्यभार ग्रहण का कुछ समय दिया जाता है और मौजूदा मामला अनोखा है, जहां तुरंत कार्यभार ग्रहण करने और कार्यभार ग्रहण के बाद छुट्टी लेने के निर्देश जारी किए गए हैं। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को 11.08.2014 को आरोप-पत्र दिया गया और 14.11.2014 को याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच शुरू हुई। जांच शुरू होने से पहले, याचिकाकर्ता ने 01.11.2014 को स्थानांतरित स्थान पर कार्यभार ग्रहण किया। अधिवक्ता का

कहना है कि जांच बैंक समय समाप्त होने के बाद भी दो दिनों के भीतर जल्दबाजी में पूरी की गई और यह 15.11.2014 को रात 8:45 बजे तक जारी रही। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता ने 15.01.2015 को जांच रिपोर्ट का उत्तर प्रस्तुत किया और उसी दिन, उच्च अधिकारियों ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर का अध्ययन किए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, जो बिना सोचे-समझे जैसा है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे याचिकाकर्ता के खिलाफ आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए पूर्व-निर्धारित थे। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को अपना बचाव पेश करने के लिए उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया और जांच जल्दबाजी में पूरी की गई। इसलिए पूरी जांच अत्यंत अनुचित है।' अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति की कुल अवधि बमुश्किल छह महीने थी और इस अवधि को देखते हुए, विवादित आदेश उच्चतर स्तर पर पारित किया गया है और यह काफी असंगत है। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के विशेषाधिकार छुट्टी खाते में विभिन्न छुट्टियां अनुपलब्ध पड़ी थीं और याचिकाकर्ता अपनी विशेषाधिकार छुट्टी का दावा करने की पात्र थी, लेकिन विशेषाधिकार छुट्टी दिए बिना, याचिकाकर्ता के खिलाफ आदेश पारित कर दिया गया है। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण तरीके से जांच की गई है। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता दो गवाहों, अर्थात् श्री एन.एल. मीना और श्री अशोक मीना की जांच करना चाहता था लेकिन प्रत्यर्थीगण ने इस अस्पष्ट आधार पर इन गवाहों की जांच करने से इनकार कर दिया कि ये गवाह आरोपों से संबंधित नहीं हैं, हालांकि, बचाव के लिए, याचिकाकर्ता के मामले को सिद्ध करने के लिए इन गवाहों की परीक्षा आवश्यक थी। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:-

(i) <u>बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ</u>

(1995) 6 एससीसी 749

(ii) <u>सूर्य प्रकाश गोठवाल बनाम राजस्थान राज्य</u>

1980 डब्ल्यू.एल.एन. 542

(iii) <u>राजस्थान राज्य बनाम गणपत राम</u>

2017 (1) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) (यूसी) 154

अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता गठिया रोग से पीड़ित थी और इस संबंध में

चिकित्सा प्रमाणपत्र/दस्तावेज भी प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया। अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक है और लागू आदेश को अपास्त किया जा सकता है और प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को सेवा में वापस बहाल करने का निर्देश दिया जाए।

(3) इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पास यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम 1976 (संक्षेप में '1976 के विनियम') के विनियमन 18 के तहत पुनरीक्षण दाखिल करने का वैकल्पिक प्रभावी उपाय है। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को पदोन्नति पर अलवर में शाखा प्रमुख के रूप में स्थानांतरित किया गया था और उसे निर्धारित समय के भीतर शामिल होना था, लेकिन याचिकाकर्ता स्थानांतरित स्थान पर कार्यभार ग्रहण करने में विफल रही और अनधिकृत तरीके से छह महीने की अवधि के लिए जानबूझकर अनुपस्थित रही। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता ने अपने स्थानांतरण आदेश को अपास्त करने के लिए उच्च अधिकारियों पर दबाव डाला था और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1)(X) के तहत अधिकारियों के खिलाफ ज्योति नगर पुलिस स्टेशन, जयपुर में 397/2014 एक झूठी एफआईआर भी दर्ज कराई थी, जिसके परिणामस्वरूप नकारात्मक अंतिम रिपोर्ट आई। अधिवक्ता का कहना है कि गवाह, श्री एन.एल. मीना और श्री अशोक मीना आरोपों के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं थे, इसलिए याचिकाकर्ता को इन गवाहों की जांच करने की अनुमति नहीं दी गई थी। अधिवक्ता का कहना है कि जिस मेडिकल सर्टिफिकेट पर भरोसा किया गया, वह वैध नहीं था क्योंकि वह एक निजी मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा जारी किया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की शारीरिक/चिकित्सा स्थिति को इंगित करने के लिए किसी भी सरकारी अस्पताल का कोई चिकित्सा प्रमाणपत्र/दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं किया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि किसी कर्मचारी द्वारा अधिकार के रूप में विशेषाधिकार छुट्टियों का दावा नहीं किया जा सकता है। विशेषाधिकार छुट्टियाँ हमेशा नियमों और विनियमों के अनुसार प्रदान की जाती हैं। अधिवक्ता का कहना है कि जांच जल्दबाजी में नहीं की गई थी और यह उचित और निष्पक्ष थी। अधिवक्ता का कहना है कि न्यायिक पुनरीक्षण का दायरा सीमित है क्योंकि माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय ने कई मौकों पर माना है कि

अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक पुनरीक्षण का दायरा नियोक्ता की व्यक्तिपरक संतुष्टि और दायरे पर पारित किया जाता है। हस्तक्षेप की सीमा संकीर्ण और प्रतिबंधित है। अधिवक्ता का कहना है कि विवादित आदेश पारित करने से पहले सही प्रक्रिया का पालन किया गया था। इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसलिए, यह याचिका खारिज किए जाने योग्य है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा रखा है:-

(i) अनिल कुमार उपाध्याय बनाम महानिदेशक, एसएसबी और अन्य

2022 (4) सुप्रीम 610

(ii) केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम एचसी (जीडी) ओम प्रकाश

2022 (2) सुप्रीम 597

(iii) निरीक्षण सहायक आयकर आयुक्त बनाम सोमेंद्र कुमार गुप्ता

1975 0 सुप्रीम (कैल) 212

(iv) स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा

(1996) 3 एससीसी 364

(v) बैंक ऑफ इंडिया बनाम जगजीत सिंह मेहता

(1992) 1 एससीसी 306

(vi) सुरेश पाथरेला बनाम ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स

(2006) 10 एससीसी 572

(vii) महाप्रबंधक (पी) पंजाब एंड सिंध बैंक बनाम दया सिंह

(2010) 11 एससीसी 233

(viii) बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ

(1995) 6 एससीसी 749

(ix) अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बनाम पी.सी. कक्कड

(2003) 4 एससीसी 364

(4) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर में कहा कि हालांकि, पुनरीक्षण दायर करने का प्रावधान 1976 के विनियमों में है, लेकिन याचिकाकर्ता ने पहले ही अपील के वैधानिक अधिकार का लाभ उठाया है और अपीलीय प्राधिकारी ने इसे खारिज कर दिया था। पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने कोई कारण नहीं था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्र उन डॉक्टरों द्वारा जारी किए गए थे जो सरकारी सेवाओं में कार्यरत थे। अधिवक्ता का कहना है कि बैंक के अधिकारियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज करना अनुशासनात्मक जांच का हिस्सा नहीं था, इसलिए प्रत्यर्थीगण को तत्काल रिट याचिका का विरोध करने के लिए ऐसे तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति को देखते हुए याचिकाकर्ता को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देकर अनुपातहीन दंड का आदेश पारित किया गया है। अधिवक्ता का कहना है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में इस न्यायालय के हस्तक्षेप के दायरे के संबंध में प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, तत्काल मामले में लागू नहीं होते हैं क्योंकि उन मामलों में कर्मचारियों को निष्क्रिय पाया गया था और तदनुसार, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर दिया गया, जबकि मौजूदा मामले में स्थिति बिल्कुल अलग है।

(5) बार में की गई दलीलों को सुना और उन पर विचार किया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

(6) यह तथ्य विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी बैंक की जयपुर शाखा में वरिष्ठ प्रबंधक (ऑप) के रूप में तैनात किया गया था और दिनांक 19.4.2014 के आदेश के तहत उसे वरिष्ठ प्रबंधक के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के लिए अलवर शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया था। यह तथ्य विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने अपने स्थानांतरण आदेश को अपास्त करने और अपनी पारिवारिक परिस्थितियों को देखते हुए उसे जयपुर में समायोजित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को 21.4.2014 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था। यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि दिनांक 29.4.2014 के आदेश के तहत प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्ता को तुरंत अलवर शाखा में कार्यभार ग्रहण करने से राहत दी, लेकिन याचिकाकर्ता अलवर शाखा में शामिल नहीं हुई और विशेषाधिकार छुट्टी (संक्षेप में "पी.एल.") के लिए चिकित्सा अधिकारियों द्वारा जारी किए गए चिकित्सा प्रमाणपत्र के साथ चिकित्सा आधार पर कई आवेदन दिए। यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि

याचिकाकर्ता का कोई भी आवेदन स्वीकार नहीं किया गया और बार-बार प्रत्यर्थीगण ने उसे अलवर शाखा में कार्यभार ग्रहण करने का निर्देश दिया। लेकिन याचिकाकर्ता ने स्थानांतरित तैनाती स्थल पर कार्यभार ग्रहण नहीं किया। इसलिए, 11.8.2014 को याचिकाकर्ता के खिलाफ विनियम 1976 के विनियम 6 के तहत निम्नलिखित आरोपों के साथ आरोप-पत्र जारी किया गया था:-

> "<u>आरोप-पत्र:</u>
> 31.08.2012 से बैंक की जयपुर शाखा में वरिष्ठ प्रबंधक के रूप में आपकी सेवा के दौरान, आपने नीचे उल्लिखित अनियमित कार्य किए हैं;
>
> 1. आप जयपुर क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा जारी निर्देशों का पालन करने में विफल रही हैं। डीजीएम एवं मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक, जयपुर क्षेत्र ने आदेश संख्या सीआरएमओ/एडीएमएन/11/2014 दिनांक जारी किया था। 19.04.2014 को आपको बैंक की जयपुर शाखा से अलवर शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया और तदनुसार आपको 29.04.2014 को जयपुर शाखा से मुक्त कर दिया गया। हालाँकि, अभी तक आपने स्थानांतरित शाखा में कार्यभार ग्रहण नहीं किया है और इस प्रकार आपने वरिष्ठ प्राधिकारी के वैध आदेश का उल्लंघन किया है।
>
> 2. आप बैंक के मानदंडों/दिशानिर्देशों की घोर अवहेलना करते हुए सक्षम प्राधिकारी द्वारा आपको कोई छुट्टी मंजूर किए बिना 30.04.2014 से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहे हैं।
>
> 3. आपने वरिष्ठ प्राधिकारी पर बाहरी प्रभाव डालने का प्रयास किया है और अलवर शाखा में आपके स्थानांतरण को अपास्त करने की व्यवस्था करने से संबंधित मामले के संबंध में बैंक के शीर्ष कार्यकारी से सीधे संवाद किया है।
>
> इस प्रकार आपने अपने वरिष्ठ अधिकारियों के वैध और उचित निर्देशों के बावजूद, बैंक के मानदंडों/दिशानिर्देशों की घोर अवहेलना करते हुए कई अनियमित कार्य किए हैं और इस प्रकार आप अपने कर्तव्यों को पूरी निष्ठा, परिश्रम और अच्छे आचरण और अनुशासन को बनाए रखने में विफल रहे हैं। यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के विनियम 3(1), 3(2), 12, 13(1) और 13(2) का उल्लंघन; जिससे उक्त विनियमों के विनियम 24 के संदर्भ में कदाचार हो रहा है।"

(7) याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत किया और अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया और वह 01.11.2014 को अलवर शाखा में अपना कार्यभार ग्रहण किया। इसके बाद, 14.11.2014 को उसके खिलाफ जांच की कार्यवाही शुरू की गई और 15.11.2014 को पूरी की गई। याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी से उसके दो गवाहों को बुलाने का अनुरोध किया

(i) श्री एन.एल. मीना (याचिकाकर्ता के पति) और

(ii) श्री अशोक मीना (एसबीबीजे के वरिष्ठ प्रबंधक)

जांच अधिकारी ने यह देख कर गवाहों को नहीं बुलाया कि आरोप-पत्र में उल्लेखित आरोपों के लिए उनके साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है.

(7.1) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता को बचाव साक्ष्य देने का उचित अवसर दिए बिना जांच जल्दबाजी में संपन्न की गई, इसलिए पूरी जांच दूषित हो गई है क्योंकि इसने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है।

(8) इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के इस तर्क में कोई दम नहीं लगता क्योंकि ये दोनों गवाह आरोप-पत्र में उल्लिखित आरोपों से संबंधित नहीं थे, इसलिए उन्हें बचाव साक्ष्य में नहीं बुलाया गया था। जांच अधिकारी द्वारा इसे दो दिन में पूरा करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं थी क्योंकि विनियम 1976 के तहत, किसी विशेष अवधि में जांच पूरी करने के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है।

(9) अब यह न्यायालय याचिकाकर्ता के दूसरे तर्क से निपटने के लिए आगे बढ़ती है कि याचिकाकर्ता ने 15.01.2015 को जांच रिपोर्ट का उत्तर प्रस्तुत किया और उसी दिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उत्तर पढ़े बिना और बिना सोचे-समझे आक्षेपित आदेश पारित कर दिया।

(9.1) उत्तर को देखने से पता चलता है कि इसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष 13.01.2015 को प्रस्तुत किया गया था लेकिन पावती 15.01.2015 को दी गई थी। इसका अर्थ यह है कि उत्तर 13.01.2015 को प्रस्तुत किया गया था, इसीलिए इस रिट याचिका की अनुक्रमणिका में भी स्वयं याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रस्तुत करने की तिथि "13.01.2015" बताई गई है। टाइप किया गया उत्तर (अनुलग्नक-37) दिनांक "13.01.2015" दर्शाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा 13.01.2015 को उत्तर प्रस्तुत किया गया था और उत्तर की संपूर्ण सामग्री को देखने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विवादित आदेश पारित किया गया है।

(9.2) अब इस न्यायालय के निर्णय के लिए प्रश्न यह है कि "क्या छह महीने की अनुपस्थिति के लिए "अनिवार्य सेवानिवृत्ति" की सजा उचित है या असंगत?"।

(9.3) इस तथ्य का निर्णय करने के लिए याचिकाकर्ता के पूरे सेवा कैरियर को देखना

आवश्यक है।

(9.4) रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को दिसंबर 1989 के महीने में लिपिक कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था और तीन बार उसे उच्च पदों पर पदोन्नत किया गया था, अर्थात जेएमजी स्केल-I, एमएमजी स्केल-2 और एमएमजी स्केल-3 के पद पर। (वरिष्ठ प्रबंधक)। और पच्चीस वर्षों की सेवा के दौरान, याचिकाकर्ता को कई मौकों पर बैंक की विभिन्न शाखाओं में स्थानांतरित किया गया और उसने आदेशों और आदेश का पालन किया और अपनी पोस्टिंग के स्थानांतरित स्थानों पर कार्यभार ग्रहण किया। इस अवधि में उनका सेवा करियर बेदाग रहा और उनके खिलाफ कोई विभागीय या अनुशासनात्मक जांच शुरू नहीं की गई और उन पर किसी भी प्रकार का कोई जुर्माना नहीं लगाया गया।

(9.5) लेकिन, साथ ही यह तथ्य विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता को 19.04.2014 को अलवर शाखा में वरिष्ठ प्रबंधक के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के लिए स्थानांतरित किया गया था और उसने 01.11.2014 तक स्थानांतरित पोस्टिंग स्थान पर कार्यभार ग्रहण नहीं किया और वह वहीं बनी रही लगभग छह महीने अर्थात 01.07.2018 से अनुपस्थित। 30.4.2014 से 01.11.2014 तक. हालाँकि याचिकाकर्ता ने अपने मामले पर पुनर्विचार करने और अपने परिवार और चिकित्सा परिस्थितियों के कारण अलवर शाखा में अपने स्थानांतरण को अपास्त करने के लिए कई अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, लेकिन प्रत्यर्थी बैंक ने उसके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया और बार-बार उसे अलवर शाखा में कार्यभार ग्रहण करने के लिए निर्देशित किया गया और वह कार्यभार ग्रहण करने में असफल रही, प्रत्यर्थीगण ने अनाधिकृत अनुपस्थिति के उसके ऐसे आचरण के लिए आरोप-पत्र जारी किया और जांच करने के बाद, उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति की शास्ति दी गई।

(10) यह न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निर्णय में हस्तक्षेप की गुंजाइश के बारे में पर्याप्त सचेत है। ऐसे मामलों में हस्तक्षेप का दायरा बहुत संकीर्ण और सीमित है, लेकिन उच्च न्यायालय के पास उस मामले में राहत देने की शक्ति है जहां लगाई गई सजा/जुर्माना न्यायिक विवेक को झटका देता है।

(10.1) माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बी.सी. चतुर्वेदी (सुप्रा.) ने पैरा 12, 2 और 5 के मामले में निम्नानुसार कहा है:-

"12. न्यायिक पुनरीक्षण किसी निर्णय के खिलाफ अपील नहीं है बल्कि निर्णय लेने के तरीके की पुनरीक्षण है। न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को उचित संव्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह न्यायालय की नजर में आवश्यक रूप से सही है। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोप में जांच की जाती है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण यह निर्धारित करने के लिए चिंतित होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया गया है। चाहे निष्कर्ष या निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित हों, जिस प्राधिकारी को जांच करने की शक्ति सौंपी गई है, उसके पास तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिकार क्षेत्र, शक्ति और अधिकार है। लेकिन वह निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित होना चाहिए। अनुशासनात्मक कार्यवाही पर न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही उसमें परिभाषित साक्ष्य तथ्य या साक्ष्य लागू होते हैं। जब प्राधिकारी यह स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष को उससे समर्थन प्राप्त होता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह मानने का पात्र है कि अपराधी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायालय/न्यायाधिकरण अपनी न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति के तहत साक्ष्यों की पुनः पुनरीक्षण करने और साक्ष्यों पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/न्यायाधिकरण वहां हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी ने माना कि दोषी अधिकारी के खिलाफ कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत है या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन है या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पहुंचा गया निष्कर्ष आधारित है। बिना किसी साक्ष्य के यदि निष्कर्ष ऐसा है जिस पर कोई भी उचित व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सका है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, और राहत को इस तरह से ढाल सकता है कि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए उपयुक्त बनाया जा सके।"

"2. यह अपील और भारत संघ द्वारा दायर की गई सहयोगी अपील ओ.ए. में प्रशासनिक न्यायाधिकरण के क्रमांक 609 ऑफ़ 1986 दिनांक 14 मार्च 1989 आदेश से उत्पन्न हुई है। अपीलकर्ता की ईमानदारी, जब वह आयकर अधिकारी के रूप में काम कर रहा था, संदेह के घेरे में आ गई थी। सी.बी.आई. द्वारा की गई जांच पर, उसने प्रत्यर्थी को बताया था कि हालांकि जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों से पता चला कि अपीलकर्ता के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोत से अधिक संपत्ति थी, क्योंकि साक्ष्य इतने मजबूत नहीं थे कि धारा 5(1) के तहत मुकदमा चलाया जा सके। (ई) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (संक्षेप में, 'अधिनियम') के तहत, सक्षम प्राधिकारी अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच में आगे बढ़ सकता है।"

"5. विवाद का विरोध करते हुए, संघ के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ट्रिब्यूनल को सबूतों की सराहना करने का अधिकार नहीं था और न ही इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए योग्यता के आधार पर सबूतों पर

> विचार करने के लिए कि क्या अपीलकर्ता के पास आय से अधिक संपत्ति थी। ट्रिब्यूनल ने सबूतों की सराहना करने में गलती की। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास दंड देने की निस्संदेह शक्ति और अधिकार था। जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पाए गए तथ्यों पर कि अपीलकर्ता के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोत से अधिक संपत्ति थी, ट्रिब्यूनल ने सेवा से बर्खास्तगी की सजा में हस्तक्षेप करना और इसके बजाय अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश देना अनुचित था।"

(10.2) यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के खंड 13 में कहा गया है कि कोई भी अधिकारी कर्मचारी सक्षम प्राधिकारी की छुट्टी/अनुमति के बिना अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित नहीं होगा। यह खंड आगे कहता है कि अधिकारी कर्मचारी बीमारी की स्थिति में उचित चिकित्सा प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए बिना सामान्यतः अनुपस्थित रहेगा।

(10.3) यहां इस मामले में, याचिकाकर्ता ने पी.एल. मंजूरी के लिए कई आवेदन प्रस्तुत किए। चिकित्सा आधार पर और चिकित्सा अधिकारियों के चिकित्सा प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत किए गए। हालाँकि, इसे बैंक द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और अंत में यह निष्कर्ष निकाला गया कि याचिकाकर्ता 30.04.2014 से आरोप-पत्र जारी होने की तिथि तक से जानबूझकर अनुपस्थित रही।

(10.4) यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि एक कर्मचारी स्थानांतरण के आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है और वह स्थानांतरित पोस्टिंग के स्थान पर कार्यभार ग्रहण करने के लिए बाध्य है। ऐसे कर्मचारी को बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने का कोई अधिकार नहीं है। बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने का ऐसा आचरण बर्दाश्त नहीं किया जाएगा और ऐसे व्यक्ति को सजा भुगतनी होगी। परंतु इतना कठोर होना आवश्यक नहीं है कि उसे सेवा से बाहर कर दिया जाए।

(10.5) आनुपातिकता का सिद्धांत इस प्रकार न्यायिक पुनरीक्षण की सुमान्यता प्राप्त अवधारणा है और यदि यह पाया जाता है कि सजा असंगत है, तो न्यायालय के लिए न्यायिक पुनरीक्षण के सीमित दायरे के तहत हस्तक्षेप करना खुला रहता है।

(10.6) कदाचार की तुलना में सजा की आनुपातिकता के सिद्धांतों को विभिन्न यूरोपीय देशों के न्यायालयों के साथ-साथ ब्रिटिश न्यायालयों द्वारा भी मान्यता दी गई है। यह बार-बार माना गया है कि यदि किसी कर्मचारी को दी गई सजा अनुपात से बाहर है, तो न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप करने की शक्ति है। <u>सिविल सेवा संघ परिषद बनाम सिविल</u>

सेवा मंत्री में (1984) 3 सभी ई.आर. 935, यह अभिनिर्धारित किया गया है:

> "मुझे लगता है कि न्यायिक पुनरीक्षण आज एक ऐसे चरण में विकसित हो गई है, जहां विकास के चरणों के किसी भी विश्लेषण को दोहराए बिना, कोई भी आसानी से तीन प्रमुखों के तहत वर्गीकृत कर सकता है, जिन आधारों पर प्रशासनिक कार्रवाई न्यायिक पुनरीक्षण के नियंत्रण के अधीन है। पहले आधार को मैं 'अवैधता' कहूंगा, दूसरे को 'अतार्किकता' और तीसरे को 'प्रक्रियात्मक अनौचित्य' कहूंगा। इसका मतलब यह नहीं है कि मामले दर मामले के आधार पर आगे का विकास समय के साथ और आधार नहीं जोड़ सकता है। मेरे मन में है विशेष रूप से भविष्य में 'आनुपातिकता' के सिद्धांत को संभावित रूप से अपनाना, जिसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय के हमारे कई साथी सदस्यों के प्रशासनिक कानून में मान्यता प्राप्त है।"

उच्चतम न्यायालय के उनके आधिपत्य ने सजा की आनुपातिकता के सिद्धांत को भी मान्यता दी जब उन्होंने कहा कि "दंड देने वाला एक आदेश, जो आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन है या कदाचार की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अत्यधिक अत्यधिक है, मनमाना है और इस प्रकार "भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का" उल्लंघनकारी घोषित किया जा सकता है।"

(10.7) भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य 1983-II-एलएलजे-1 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा: (पी-7) "यह भी उतना ही सच है कि लगाया गया जुर्माना कदाचार की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए और वह कदाचार की गंभीरता से अधिक कोई भी दंड संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।"

(10.8) माननीय उच्चतम न्यायालय ने अध्यक्ष सह प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड बनाम मुकुल कुमार चौधरी (2009) 15 एससीसी 620 के मामले में, आनुपातिकता के सिद्धांत और न्यायिक पुनरीक्षण के तहत उच्च न्यायालय के पैरा 19, 20, 21 एवं 22 की निम्नानुसार न्यायिक समीक्षा की है:-

> "**19.** इस प्रकार, आनुपातिकता का सिद्धांत हमारे न्यायशास्त्र में न्यायिक पुनरीक्षण की सुप्रसिद्ध अवधारणा है। कदाचार का आरोप सिद्ध हो जाने के बाद सज़ा निर्धारित करने की विवेकाधीन शक्ति निर्णय-निर्माता के विवेकाधीन क्षेत्र और एकमात्र शक्ति के अंतर्गत आती है, लेकिन ऐसी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन होता है यदि इसका उपयोग ऐसे तरीके से किया जाता है जो गलती के अनुपात से बाहर हो। आरोपों से अत्यधिक अधिक सज़ा देने पर छूट का दावा नहीं किया जा सकता है और यह न्यायिक पुनरीक्षण के सीमित दायरे के तहत हस्तक्षेप के लिए खुला रहता है।
>
> **20.** सजा की मात्रा के प्रश्न से निपटने के दौरान लागू किए जाने वाले

परीक्षणों में से एक यह होगा: क्या किसी उचित नियोक्ता ने समान परिस्थितियों में ऐसी सजा दी होगी? जाहिर है, एक उचित नियोक्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह कदाचार की माप, परिमाण और डिग्री और अन्य सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखे और सजा देने से पहले अप्रासंगिक मामलों को बाहर रखे।

21. वर्तमान जैसे मामले में जहां अपराधी का कदाचार छह महीने के लिए ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति था, लेकिन इस तरह के कदाचार का आरोप लगाए जाने पर, उसने निष्पक्ष रूप से अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी अनुपस्थिति के कारणों को यह कहते हुए समझाया कि उसने ऐसा नहीं किया था। उच्च प्राधिकारी के आदेश की अवज्ञा करने या कंपनी के किसी भी नियम और विनियम का उल्लंघन करने का कोई इरादा या इच्छा नहीं थी, लेकिन कारण पूरी तरह से व्यक्तिगत था और उनके नियंत्रण से परे था और, वास्तव में, उन्होंने अपना त्यागपत्र भेजा जो स्वीकार नहीं किया गया, आदेश निष्कासन को उचित नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि हमारे निर्णय में, किसी भी उचित नियोक्ता ने ऐसी परिस्थितियों में निष्कासन की अत्यधिक सजा नहीं दी होगी। सज़ा न केवल अत्यधिक कठोर है बल्कि आरोपों से कहीं अधिक है।

22. आमतौर पर, हम सज़ा के प्रश्न पर पुनर्विचार के लिए मामले को उचित प्राधिकारी के पास वापस भेज देते लेकिन वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह अभ्यास उचित नहीं हो सकता है। हमारे विचार में, न्याय की मांग तब पूरी होगी जब प्रत्यर्थी संख्या 1 को छह महीने की अनधिकृत अनुपस्थिति के सिद्ध कदाचार के लिए सजा के रूप में पूरी अवधि के लिए बकाया वेतन से वंचित कर दिया जाए।"

(11) वास्तव में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि जुर्माने की राशि के मामले में, सम्मोहक और मजबूत परिस्थितियाँ होनी चाहिए जिन्हें दर्ज किया जाना चाहिए और ऐसा हस्तक्षेप गलत सहानुभूति और उदारता के आधार पर नहीं हो सकता है। न्याय प्रदान करने की उक्त अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जहां तक मौजूदा मामले का प्रश्न है, हस्तक्षेप की आवश्यकता है, जो गलत सहानुभूति या उदारता पर आधारित नहीं है, बल्कि न्यायसंगत न्याय प्रदान करने के आधार पर है जो इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनरीक्षण की एक बानगी है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने संवैधानिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है।

(12) इस न्यायालय को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी भी सहानुभूतिपूर्ण विचार से प्रभावित हुए बिना न्याय करते समय कर्मचारी और प्रबंधन दोनों के हितों को ध्यान में रखना होगा। ऊपर चर्चा और वर्णित सभी तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि सभी प्रशासनिक निर्णयों में निष्पक्षता होनी चाहिए, विशेष रूप

से सजा देने के मामले में, जब यह कर्मचारी की आजीविका छीन लेता है जिसका प्रभाव न केवल उस पर पड़ेगा, बल्कि उसके परिवार के सदस्यों पर भी पड़ेगा।

(13) वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, और याचिकाकर्ता के पच्चीस साल के बेदाग सेवा करियर के पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि खाते में कई विशेषाधिकार छुट्टी थी याचिकाकर्ता और उसने पी.एल. मंजूरी के लिए कई आवेदन प्रस्तुत किए। चिकित्सा आधार पर और इस तथ्य को देखते हुए कि याचिकाकर्ता 01.11.2014 को अलवर शाखा में स्थानांतरित पोस्टिंग स्थान पर शामिल हो गई और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पारित होने तक वहां तैनात रही और वहां बनी रही, सजा का आदेश कठोर है। प्रत्यर्थीगण द्वारा उद्धृत और विश्वसनीय निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं।

(14) आनुपातिकता के प्रसिद्ध सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित आदेश दिनांक 15.01.2015 और अपीलीय आदेश दिनांक 12.03.2015 को अपास्त कर दिया गया है और अलग रखा गया है। सजा के प्रश्न पर पुनर्विचार करने और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर उचित आदेश पारित करने के लिए मामला उचित प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है।

(15) परिणामस्वरूप, यह याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को तुरंत बहाल करने का निर्देश दिया गया है, लेकिन वह अनिवार्य सेवानिवृत्ति की तारीख से बहाली तक किसी भी बकाया वेतन की पात्र नहीं होगी।

(16) पार्टियों को अपना खर्च वहन करना।

(अनूप कुमार ढांड), न्यायमूर्ति

MR/db/

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।